अध्याय : 3

रघुवीर सहाय : संवेदनशील कवि

अध्याय : 3

रघुवीर सहाय : संवेदनशील कवि

प्रस्तावना

आधुनिक कवियों ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक विषयों पर काव्य लेखन करते हुए तत्सम्बन्धी सामाजिक व्यवस्थाओं का भी वर्णन किया है।

रघुवीर सहायजी का स्वर भी समाज व्यवस्था के सम्बन्ध में समाजवादी ही है, पर अधिक सांकेतिक रूप से। उनका विश्वास और मान्यता है कि जन साधारण अधिक दिनों तक अभावग्रस्त नहीं रह सकते और पूँजीपतियों का छल, उच्चवर्ग का षड़यन्त्र अब नहीं चलेगा। निम्न वर्ग को प्रसन्नताएँ मिलकर रहेगी। निम्न वर्ग से वह जितना दूर रखा जाएगा उतनी ही गति से वह उनके पास आ जाएगा। जब भूखे प्यासे लोग अपना सिर उठाते हैं, तो पूंजीपति वर्ग को झूकना ही पड़ता है। आज तक जो गरीब हैं वह अमीर लोगों के ताकत का शिकार बन गए थे। उन्होंने आज तक अक्सर ही बहुत कुछ सहा है और ये अक्सर होता आ रहा है।

"जैसे गरीब पर किसी ताकतवर की मार
जहाँ कोई कुछ नहीं कर सकता
उस गरीब के सिवाय
और वह भी अक्सर हँसता है।"[1]

रघुवीर सहाय पुरानी पीढ़ी के प्रति आक्रोश के स्वरों को अपनाकर नहीं चले हैं, बल्कि अनाहत जिजीविषा, मध्यवर्गीय जीवन का दबाव तथा लोकतंत्र के जीवन की विडम्बनाओं की विवृत्ति उनके काव्य का विशिष्ट अंग बन गई है। इस तथ्य की पृष्टि उनके कविताओं में सहज ही हो जाती है।

"दुखी मन में उतर आती है पिता की छवि
अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति
उन्हीं पिता की मैं अनुकृति हूँ
यही मैं हूँ।
तुमने जो दी है अनाहत जिजीविषा
उसे क्या करें ?
कहो, अपने पुत्रों,
मेरे छोटे भाइयों के लिए यही कहो।"[2]

रघुवीर सहायजी का कहना है आज के युग में लोकतंत्र के भ्रष्टाचार से लगभग सभी लोग परिचित हैं, उस भ्रष्टाचार के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने कल्पित पात्र मुसद्दीलाल को मंत्री के रूप में ग्रहण किया है। यह निकम्मे मंत्रियों का प्रतीक है, उसकी छाया में लोकतंत्र का ठीक तरह से चलना असंभव है। ऐसे ही भ्रष्ट मंत्रियों ने नेहरू-युग के औजारों में पेंच भरी चूडियों का अविष्कार किया। इस युग में कोई बीमार इसलिए पड़ता है कि उसने मुसद्दीलाल को प्रसन्न नहीं किया।

"दर्द, खैराती अस्पताल में डाक्टर ने कहा
वह मेरा काम नहीं
वह मुसद्दी का है
वही भेजता है मुझे लिखकर इसे अच्छा करो
जो तुम बीमार हो तो उसे खुश करो
कुछ करो।"[3]

रघुवीर सहाय की कविताओं में अन्तर्मन का द्वन्द उभरकर सामने आता दिखाई देता है। उन्होंने समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों, छटपटाहट, मोहभंग, निराशा और असफलता को अपनी कविता में प्रस्तुत किया है जिससे स्पष्ट होता है उनकी कविता में बनावट नहीं है, समाज और व्यक्ति के भोगे हुए यथार्थ का चित्रण है।

कवि रघुवीर सहाय ने देश की सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक परिस्थितियों में झाँककर व्यक्ति, समाज और देश की आत्मा की इयत्ता का एक्स रे किया है। समाज में फैले हुए पाखण्ड, उससे उत्पन्न अनैतिकता और मूल्यहीनता के साथ-साथ उन्होंने दिन-प्रतिदिन के जाने पहचाने संसार के अनुभवों को चित्रित किया है। इनमें कितनी वेदना है -

"मैंने कहा
बीस वर्ष
खो गए भरमें उपदेश में
एक पूरी पीढी जनमी पली-पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में।"[4]

विसंगतियों का भयावह रूप तब प्रकट होता है जब कवि को अहसास होता है कि -

"बीस साल बाद
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला-भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्यवाही करेंगे।"[5]

कवि रघुवीर सहायजी राजनीतिज्ञों के छल, झूठे आश्वासन तथा समाज के कर्णधार ठेकेदारों के पाखण्ड का आपरेशन बड़ी कुशलता और निर्ममता से करते हैं। देश के बलिदानी नेताओं ने त्याग-तपस्या का आदर्श प्रस्तुत करके स्वतंत्रता के बाद जिस खुशहाली की कल्पना की थी उसे ही अवसरवादी और सत्ता के लोभी नेताओं की दलबंदी ने दीमक की भाँति भीतर से खाकर पोला कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में कवि का रोष और आक्रोश प्रकट हुआ है -

"राजा ने जनता को बरसों से देखा नहीं
यह राजा जनता की कमजोरियाँ न जान सके
इसलिए जनता के क्लेश का वर्णन करूँगा नहीं
इस दरबार में।"[6]

खोखली मान्यताओं, मध्ययुगीन एवं अवैज्ञानिक विचारधाराओं तथा सामाजिक रूढ़ियों के प्रति अग्रज पीढ़ी के आग्रह ने युवा-वर्ग की आत्मशक्ति को खण्डित किया। खण्डित होते हुए भी युवा-कवि वैचारिक आन्दोलन से जूझता रहा। वह टूटा भी, गिरा भी लेकिन संघर्ष की शक्ति कम नहीं हुई। जर्जर मान्यताओं से लड़ने और जुझने के स्वर आज की समस्त साहित्यिक विधाओं में हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध और कविता में सर्वत्र विरोध एवं असंतोष के स्वरों को अभिव्यक्ति मिली है। इस विरोध और असन्तोष के पीछे जीवन-मूल्यों को बदलने की बलवती की इच्छा कार्य कर रही है।

अग्रज पीढ़ी ने सत्ता स्वयं सम्हाली और त्याग, तपस्या तथा बलिदान के नाम पर युवा-पीढी को आमंत्रित किया, तो रघुवीर सहायजी कह उठे -

"हम ही क्यों वह तकलीफ उठाते जाएं
दुःख देनेवाले दुःख दें और हमारे
उस दुःख के गौरव की कविताएं गायें।
यह है अभिजात तरीके की मक्कारी
इसमें सब दुःख है, केवल यही नहीं है
अपमान, अकेलापन, फाका, बीमारी।"[7]

रघुवीर सहाय ने जीवन की दशा का चित्रण करते हुए लिखा है -

"हमने यह देखा दर्द बहुत भारी है
आवश्यक भी है, जीवन भी देता है
यह नहीं कि उससे कुछ अपनी यारी है।"[8]

कवि रघुवीर सहायजी ने व्यापक परिवेश में मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की अस्वीकृति देखकर वह आहत हो उठता है और सामाजिक विद्रूपताओं को बदलने में अक्षम होने के कारण वह कह उठता है कि, "मेरा एक जीवन है" जिसमें वह अकेला है -

"पर मेरा एक और जीवन है
जिसमें मैं अकेला हूँ
जिस नगर के गलियारों, फुटपाथों, मैदानों में
घूमा हूँ
हँसा खेला हूँ
उसके अनेक है नगर, सेठ, म्युनिसिपल
कमिश्नर नेता
और सैलानी, शतरंजबाज और अवारे
पर मैं इस हाहाहूती नगर में अकेला हूँ।"[9]

हमारे देश की अवस्था दयनीय हो गयी है। सामाजिक मूल्य बदल गए थे। राष्ट्र के कर्णधारों ने "समय आ गया है" की नीति को अपनाया। समाचार पत्र, आकाशवाणी के केन्द्रों तथा मन्त्रालयों की बैठकों में सर्वत्र कहा गया कि समय आ गया है कि कठोर परिश्रम किया जाए, समय आ गया है कि प्रत्येक भारतीय ईमानदारी से काम करें, समय आ गया है कि सब ठीक हो जाएगा, लेकिन वह समय कभी नहीं आया। "समय आ गया है" की नीति पर रघुवीर सहायजी ने लिखा है -

"समय आ गया है जब तब कहता है सम्पादकीय
हर बार दस बरस पहले मैं कह चुका होता हूं कि
समय आ गया है
एक गरीबी, उबी, पीली रोशनी, बीबी,
रोशनी, धुन्ध, जाला, यमन, हरमुनियम, अदृष्य

डब्बाबन्द शोर
गाती गला भींच आकाशवाणी
अन्त में टड्डंग।"[10]

आन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भारत ने किसी का मोहरा बनने से इन्कार किया। इससे भारत की अर्थ व्यवथा और समाज व्यवस्था दूर तक प्रभावित हुई। राजनीति के बदलते मानदण्डों ने पूरे समाज और पूरे परिवेश को प्रभावित किया।

"ठीक वक्त पर भी बोल जाते हैं
सभी लुजलुजे हैं, थुलथुले हैं, लिबलिब हैं
पिलपिल हैं
सब में पोल हैं, सबमें झोल है
सभी लुजलुजे हैं।"[12]

रघुवीर सहायजी की कविताएँ यथार्थ के साथ नीज़ी साक्षात्कार से उत्पन्न होती है। "संसार" कविता के सच्चे अर्थ में रोजमर्रा की जानी-पहचानी दुनिया के हमारे अनुभव को कुछ अधिक गहरा और सार्थक बनाता है। इन कविताओं में सामाजिक-राजनीतिक विचारों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आधार बनाकर आत्मा को पहचानने का प्रयास है। आज़ादी मिलने के बाद पिछले बीस वर्षों से हमारा देश और समाज कल्पनातीत आडम्बर, ढोंग और झूठ से ढँक गया है, सर्वग्राही स्वार्थलिप्सा, सहानुभूतिहीनता और उदासीनता ने समुदाय के हर अंश को, विशेषकर सत्ताधारी और सुविधाभोगी अंश को, दबोच लिया है। इस क्रूर निर्मम हँसी के दौर में आम आदमी पिछले बीस वर्षों से लगातार कितना बेबस होता गया है -

"बीस बरस बीत गए
लालसा मनुष्य की तिल-तिल कर मिट गयी"[12]

रघुवीर सहायजी की कविता केवल रोष और विद्रूप ही नहीं, परिव्याप्त सहज आत्मीयता और व्यक्तिगत पीड़ा भी इन कविताओं को अनन्य और अद्वितीय

बनाती है। वे इस पाखंड और उससे उत्पन्न अनैतिकता तथा मानसिक गिरावट के प्रति एक संवेदनशील व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ होकर भी आम आदमी की घुटन और तकलीफ को प्रकट करती है -

"एक शब्द कहीं नहीं कि वह लड़का कौन था
क्या उसके बहनें थी
क्या उसने रखे थे टीन के बक्से में अपने अजूबे
वह कौन-कौन से पकवान खाता था
एक शब्द कहीं नहीं वह एक शब्द जो वह खोज
रहा था जब वह मारा गया।"[13]

नयी कविता में उभरती हुई सामाजिक चेतना भी दृष्टव्य है क्योंकि ऐसी भी नयी कविता के कवि है जो मानते हैं कि समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी से छोटी चेतनक्रिया किसी-न-किसी अंश में सामाजिक होती है। फिर कविता तो समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतन क्रिया है।

"जो पानी के मालिक हैं
भारत पर उनका कब्जा है
जहाँ न दें पानी वाँ सूखा
जहाँ दे वहाँ सब्जा है।"[14]

नयी कविता की धारा में सामायिक बोध के परिणामस्वरूप उत्पन्न नयी साठोत्तरी कविता और अस्वीकृत मूल्यों के क्रोड से उभी अकविता आयी। इन दोनों का सामाजिक यथार्थ अलग-अलग हो गया। कवि राजनीतिक विघटन, सामाजिक असमानता आदर्शवादी पर कर्म से कलुषित चेहरों का उद्‌घाटन, अपराधी की घटनाओं का चित्रांकन परंपरा में निम्नांजित हो गयी तथा नई कविता, यौन, स्त्री-पुरुष के कलुषित संदर्भ, कुंठा, व्यक्ति पीड़ा का आलंबन बनाकर चली। इसमें स्वकेंद्रित चेतना की झुंझलाहट पाई जाती है।

"तब मैं पूछूंगा नहीं कि सौ मोटी गरदनें
झूकी हैं
बुद्धि के बोझ से
श्रद्धा से
कि लज्जा से
मैं सिर्फ उन सौ गंजी चाँदों पर टकटकी बांधे रहूंगा
अपनी मरी हुई मशीनगन की टकटकी।"[15]

रघुवीर सहायजी ने सभ्यता की नकाब ओढे समाज, डरावने जीवनव्यापी शून्यता और संत्रस्त जिंदगी को ऐसे कोनों से देखा था जिससे उनका सारा नक्शा उनके मन में था। यही नक्शा कविताओं में बोलता नज़र आता है। इनके पीछे उनकी लोकहितवादी भावना काम कर रही है। कवि आने वाले खतरे की हर समय सूचना देता है जो लोगों के लिए खतरा बनकर आ रही है। उसके कारण समाज का पतन होने वाला है। सामान्य मनुष्य अपना जीवन अच्छी तरह से नहीं बीता पाएगा। इन्सान को इन सब चीजों से क्रोध तो होगा पर वह उन चीजों का डटकर विरोध नहीं कर पाएगा। इन खतरों की सूचना देते हुए तथा लोगों को सावधान करने के लिए कवि यह चेतावनी देता है -

"जल्दी कर डालो कि फलने-फूलने वाले है लोग
औरतें पियेंगी आदमी खायेंगे - रमेश
एक दिन इसी तरह आयेगा - रमेश
कि किसी की राय न रह जायेगी - रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय - रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा - रमेश।"[16]

नए कवियों ने अपने मानवतावादी दृष्टिकोन को लेकर समाज की समस्या को भी वाणी देने का प्रयत्न किया है। समाज में पहले से ही औरत को कुछ भी स्थान नहीं दिया गया। हर समय उस पर अन्याय ही किया गया । उसके दुःख, दर्द को कोई जानने का प्रयत्न नहीं करता। हर समय वह अपने घर के बारे में, अपने परिवार के बारे में सोचती रहती है और सोचते-सोचते उसका अन्त भी होता है। कवियों ने नव-युग की विकसित चेतना के अनुसार परिवर्तन की दिशाओं पर अधिक बल दिया है। प्राचीन काल से चली आयी रूढ़ियो को बदलने का उनका यह प्रयत्न है। शोषित, सामाजिक जड़ता तथा धार्मिक रूढ़ियों से त्रस्त समाजहेतु कल्याणकारी तत्वों की खोज करना ही समस्त कवियों का मुख्य उद्देश्य रहा है।

रघुवीर सहाय ने सामाजिक चेतना के परिवेश में पुरूष के कारण तड़प-तड़प कर अपने प्राण विसर्जित करने वाले औरत का दर्दनाक चित्रण "किले में औरत" कविता के सहारे किया है। जो हर समय अपने घर का भला चाहती है, परन्तु जब वह बूढी होती है, बीमार पड़ती है तो उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। पुरूष कहते हैं वह औरत की बीमारी है और जब उसकी मौत होती है तो उसकी अर्थी उठायी जाती है|औरते घर धोने का प्रयत्न करती है। यह हमारे समाज की स्थिति है। इस स्थिति को देखकर कवि का हृदय तिलतिल हो उठता है।

"उस दिन बुढ़िया बीमार थी
मर्दों ने कहा औरतों की बीमारी है
वह बुढ़िया औरत के रहस्य -
उन बीस जनों के औरतपन - की गठरी बन
कोने में खटिया पर जा करके पहुड़ रही
वह पहुड़ी रही साल भर तक फिर गुजर गयी
औरतें उठी घर धोया मर्द गये बाहर
अर्थी लेकर।"[17]

आज का कवि संवेदनशील कहा जाता है परंतु वह संवेदना उस समय कहाँ गयी थी जब औरत पर जिन्दगी लाचार होकर जी रही थी। जब वह रो-रोकर अपने जीवन की गाथा बता रही थी। उसे कई कोठरियों की कतार में लेकर जाते ये और हम सिर्फ उसके रोने की आवाज ही सुनते थे -

"उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा।"[18]

अकेलेपन के अहसास की वैयक्तिक अनुभूति को जिसने अपने विशाल पंजों में जकडी हुई नयी पीढ़ी को निष्क्रिय, खोखला एवं कुंठाग्रस्त बना दिया था। समाज की अवस्था दयनीय हो गयी है। जो लड़की बड़ी होने के बावजूद भी उसकी शादी नहीं होती और वह सिर्फ देख रहीं है - साहबों के साथ शादी करके आने जाने वालें को। परिस्थिति के कारण उसकी शादी भी नहीं हुई है और वह बड़ी हो गयी है।

"लम्बी और तगडी बेधड़क लड़कियाँ
धीरज की पुतलियाँ
अपने साहबों को सलाम ठोंकते मुसाहबों को ब्याह कर
आ रही होंगी जा रही होंगी
वह खडी लालच में देखती होगी उनका कहा।"[19]

नयी कविता विशेष रूप से सामाजिक चेतना से संपन्न है। नयी कविता घर, आंगन, दुकान, अस्पताल हमारे आसपास फैले सारे जटिल और संकुल जीवन का साक्षात्कार करती है। रघुवीरजी का कहना है आज लोग एक-दूसरे की सहायता नहीं करते, एक-दूसरे के साथ प्यार का बर्ताव नहीं करते। जो प्यार करते हैं उनकी एक मात्र निशानी भी उनसे अलग हो जाती है। जो औरत अपने बेटे को हर समय अपने पास देखना चाहती है। वह बेटा सिर्फ बीमारी के कारण ही उसके पास आता है, परन्तु वह बीमारी के कारण ही संसार को छोड़कर, अपनी माँ को छोड़कर इस संसार से चला जाता है। इस सामाजिक अवस्था का वर्णन किए बिना कवि

रघुवीर सहायजी का संवेदनशील हृदय नहीं रहता वे कह उठते हैं -

"दो दिन ऐसा रहा
फिर मोहन रोग के एकांत के भीतर
और कहीं चला गया
कमला फिर अकेली रह गयी कमला।"[20]

राजनीतिक खिलाडियों की कृपा से संपूर्ण मानवता शिबिरा में बँट गयी है। जो पती अपने पत्नी से बहुत प्यार करता है उसको ही वह लोग कत्ल का हुक्म देते हैं। जो बीवी है वह अपने घर को बचाने के लिए हमारे देश में जो महामंत्रियों ने तोड़ा है उसे जोड़ने का प्रयत्न करती है। उस औरत के हाथ खुरदरे हो गये हैं और पाँव फट गये हैं। उस औरत की जान बचाने के लिए खुद मर जाने वाले पति पर लोग यकीन नहीं करते और कहते हैं यह सिर्फ एक चाल है। आखिर वह अपने बीवी को बचाने में कामयाब तो होता है परन्तु खुद मारा जाता है और उसके कत्ल का हुक्म उसकी बीवी को था। इसप्रकार की चेतना का एक बेमिसाल उदाहरण रघुवीर सहाय ने दिया है -

"नरनारी संबंध का अध्ययन करने वाले
विभाग के संगणक की यही राय थी
हम दोनों के भेदों का ब्योरा
उसमें हमारे पड़ोसी ने डाला था।"[21]

इसके आगे चलकर ही उन्होंने कहा है -

"इस सेवा के बदले उसने अपनी बीवी को
बचा रखना चाहा था
वह उसे बचा सका
पर खुद मारा गया
उसके कत्ल का हुक्म उसकी बीवी को था।"[22]

"हैं" कविता में कवि ने समाज का अच्छी तरह से चित्रण किया है। राजनीतिज्ञ लोग समाज का भला नहीं चाहते। हर समय वह पीछे किस तरह से जाए इसके बारे में सोचते रहते हैं। जो मर रहें हैं उनको खत्म करने के लिए ही जैसे वह बैठे हैं। उनका कहना है कि जो लोग अधमरा है और जिन्दा है वही देश के दुश्मन है। जो बुढ़े हो चुके वे खत्म हो चुके हैं और जो बुढ़े हो रहें हैं वह अभी जिन्दा हैं ऐसी हमारी देश की अवस्था है।

कवि का संवेदनशील हृदय जो लोग मर रहें हैं उनको पहचानने के लिए कह रहा है देश और भूमी के बारे में सोचने के लिए कहने के बावजूद भी उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता क्योंकि राजा प्रजा की दुर्बलता नहीं पहचान सकता।

"यह समाज मर रहा है इसका मरना पहचानो मंत्री
देश ही सब कुछ है धरती का क्षेत्रफल सब कुछ है
सिकुड़कर सिंहासन भर रह जाये तो भी वह सब कुछ है
राजा ने मन में कहा जो राजा प्रजा की दुर्बलता नहीं
पहचानता।"[23]

नये कवियों ने हर एक चेहरे का पर्दाफाश करने का प्रयत्न किया। हर एक चेहरे के पीछे धोखा है जो दिखायी देता है वह वैसा होता नहीं है। जो अच्छे है वह अपने अमिरी के कारण दिखायी देते हैं। जो चेहरे सफेद पड गए हैं, जिनमें खून नहीं है, आँखे फटी रहीं है। अपने होते हुए भी पहचानना मुश्किल हो गया है। यह सब परिणाम जो हैं वह सामाजिक विषमता का है। इस धोखाधड़ी को प्रस्तुत करते हुए कवि का मन कराह उठता है -

"खेत में सजी हुई क्यारियाँ थी
उनमें पानी भरा था
मैंने हाथ से उन्हें पटीला
अँखुए झाँकते दिखाई दिये
सपना था यह
धीरे से बदल गया।"24

कवि रघुवीर सहाय जीवन के बारे में हर बार विचार करते हैं। अपने बच्चों के जीवन के बारे में सोचते हैं परन्तु आज जीना जैसे खेल हो गया है। हर एक अपनी मर्जी से जीने का प्रयत्न करता है। जो आज बोलते हैं वे कल कुछ नहीं करते। जिसे आना है वह अपने समय से आयेगा और जीने का जब वह प्रयास करेंगे तो उन्होंने जो तर्क किए थे उसका बिल्कुल ध्यान ही नहीं रहेगा। कवि कहता है यह जीने का खेल है हर समय चलता रहेगा। जीने के बारे में और विचारों में किस प्रकार का परिवर्तन होता है यह दिखाते हुए कवि कह उठा है -

"एक दिन
मेरे अपने जीवन में ही खत्म होने वाला
है यह खेल
इस घर की दीवार पर मेरी तसवीर होगी
बच्चे आयेंगे पर मेरी कल्पना में नहीं-अपने
समय से आयेंगे
और उनकी बोली में उनका तर्क नहीं होगा
जिसको आज सुनता हूँ।"[25]

कवि रघुवीर सहाय समाज की जो असलियत वह हमारे सामने लाने का प्रयत्न करते है। उनका कहना है आज समाज में हर समय एक-दूसरे को धोखा देने का ही प्रयत्न किया जाता है। जो जवान है और नतीजों पर पहुँच चुके हैं वे खत्म हो चुके हैं, परन्तु जो जवान है और हर बार गलतियाँ करके जानते जा रहे हैं कि गलतियाँ क्या हैं वे अभी तक जिन्दा है। कवि रघुवीर सहायजी इसी कारण ही कहते हैं कि जो अपना सब कुछ न्योछावर करना चाहता है वह देश के लिए मरता है परन्तु जो बार-बार गलतियाँ करते हैं जिन्हें इस देश में रहने का भी अधिकार नहीं है ऐसे लोग इस देश में जवान होने के बावजूद भी जिंदा है। इसलिए कवि रघुवीर सहाय कह उठे हैं कि -

"जो बुढ़े हो चुके वे हो चुके खत्म
जो बुढ़े हो रहे हैं वे अभी जिन्दा हैं
जो जवान हैं और नतीजों पर पहुंच चुके हैं
वे भी खत्म हो चुके
जो जवान हैं और हर बार गलतियाँ करके
जानते जा रहे हैं कि गलतियाँ क्या हैं
वे अभी जिन्दा हैं।"[26]

कवि रघुवीर सहाय हर समय समाज का पर्दाफाश करना चाहते हैं। कवि कहता है कि कानुन भी बिका हुआ है वह बड़े लोगों के जेब में है। जिस लोगों के पास पैसा है, ताकत है वह कुछ भी कर सकते हैं। जिन लोगों ने यानी की जो गरीब हैं, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया है वह न किए की सजा भी भुगतते हैं। "गुलाम स्वप्न" इस कविता में उन्होंने ऐसा ही दर्दनाक चित्रण किया है। जिसमें एक लड़की को कैद हो जाने के बाद हो वह जेल में कभी बड़ी नही हुई परंतु उसके चेहरे से उसके उम्र का पता चलता है। उसकी जो छोटी बहन है वह इस संसार में नहीं रही। जिस व्यक्ति के खून का आरोप उस पर था वह तो जिन्दा था और वह बेवजह ही शिक्षा भुगत रही है। ऐसे निरपराध लोगों पर अनेक प्रकार के जुल्म सरकार की ओर से, कानुन की ओर से होते रहते हैं तब कवि का हृदय कह उठा है -

"वे उपर वाले कमरे में चले गए
और वहाँ बड़ी गोल मेज़ पर बैठा हुआ
उनके बीच वह भी था जिसको मैंने अपने
कमरे में मरते हुए देखा था।"[27]

कवि रघुवीर सहाय ने जब समाज का वर्णन अपने कविताओं में किया है तब उन्होंने समाज का एक कोना भी नहीं छोडा है। उनकी कविता सामाजिकता से भरपूर है। ऐसे ही एक कविता में कलाकारों के दुःख का और उसके साथ-साथ

उनके सपनों को दिखलाने का प्रयत्न किया है। कलाकारों के जो सपने हैं वह एक अच्छी प्रतिभाशाली रचना तैयार करें। परन्तु हर वर्ष की तरह जो लोग मारे जाते हैं इसी तरह इस वर्ष भी लोग मारे गए और उनमें वह कलाकार भी थे जिनके सपने अधूरे रह जाते हैं। कलाकार समाज के सामने एक नयी रचना प्रस्तुत करना चाहता है, समाज को आनंद देने की भावना उसके मन में होती है परन्तु हमारे देश के कुछ कुटिल लोग उनको भी जिन्दा नहीं रहने देते। उनकी बेवजह ही मौत हो जाती है। आज हमारे समाज को आनन्द देने वाले लोग भूख के कारण ही मरते हैं परन्तु उन पर हमारी सरकार कुछ विचार नहीं करती और वह जिस प्रकार से यातनापूर्ण जीवन भोगते हुए यातना को साथ लेकर ही मरते हैं। कवि रघुवीर सहायजी के कविताओं में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। "चेहरा" कविता में इसीप्रकार का उदाहरण -

"जो शरीर सूखे मरे पाये थे
उनमें जाने कितने कलाकारों के थे
उनकी कोई रचना छपी नहीं थी बल्कि
उनकी कोई रचना हुई नहीं थी क्योंकि
अभी उन्हें करने थी
दो हजार वर्ष के अत्याचार के नीचे से उठकर
उन्हें एक दिन करनी थी रचना
इसके पहले ही वे मारे गये
इस वर्ष पिछले वर्ष की तरह।"[28]

नए कवियों ने हमारे देश की सामाजिक विषमता का बहुत ही अच्छी तरह से वर्णन किया है। "चेहरा" कविता में कवि रघुवीर सहायजी ने समाज की विषमता स्पष्ट रूप से दिखलाने का प्रयत्न किया है। राजधानी में रहकर भी जो लोग अधमरे हैं यानी की खुद का बोज वह खुद नहीं सम्हाल सकते और जो दूसरे हैं वह अपने पेट के लिए उन लोगों को ढोने का कार्य करते हैं। हमारे देश में

आबादी ही आबादी है। आबादीवाले, शरणार्थी और रिक्शेवालों की अवस्था एक जैसी ही है, सब की पीठ एक जैसी ही दीखती है। और जो इनका सहारा लेकर चलते हैं, असहाय हैं उन्हें अपनी जिन्दगी में पूरा तन ढँकने के लिए कपड़ा नहीं मिलता। मरने के बाद भी उनके शरीर पर पूरा कफन नहीं होता, जो उनके रिश्तेदार है वह भी जल्दी जल्दी उन लोगों को जलाने के लिए चले जाते हैं। हमारे समाज में इतनी विषमता है कि मरने के बाद भी उन लोगों को ठीक तरह से कफन नहीं मिलता। ऐसे असहाय, आबादीवाले, शरणार्थी लोगों का चित्रण किए बिना कवि का संवेदनशील हृदय नहीं रहता।

"प्राचीन राजधानी अधमरे लोग
वही लोग ढोते उन्हीं लोगों को
रिक्शे में
पन्द्रह लाख आबादी दस लाख शरणार्थी
रिक्शे वाले की पीठ शरणार्थी की पीठ
एक सी दीखतीं
बस चेहरे हैं जैसे बलपुर्वक अलग-अलग किये गए
एक बुढ़िया लपकी हुई जाती थी
पीछे पीछे चुप चलती थी औरत वह बहन थी
आगे आगे लाश पर पूरा कफन नहीं था
वे उसे ले जाते थे जल्दी-जल्दी जला देने को।"[29]

रघुवीरजी की रचनाओं में सामाजिकता का भाव-बोध और यथार्थ के चित्र बहुत से मिलते हैं। उनके काव्य में लोक-जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है। वर्तमान जीवन में सर्वत्र मानसिक उहापोह, चिंता, निराशा, उलझने तनाव और खिन्नता व्याप्त है। मनुष्य विभाजित है, उसका मन टूटा हुआ है और वह मस्तिष्क से बौना हो गया है। सभ्यता के विकास ने मानव को कॉम्प्यूटर, कार, इलेक्ट्रोन, टी·व्ही· जैसी सुविधाएँ तो दे दी है। यह सब सुविधाएँ तो हैं परन्तु इसका उपयोग

समाज के जो गरीब लोग हैं उनको नहीं मिल रहा हैं। आज टेलिविजन पर जो दिखाना चाहिए वह तो नहीं दिखाया जाता क्योंकि उन लोगों की दृष्टि से इसका कोई मूल्य नहीं है। जो यथार्थ है उसे हर समय छिपाने का प्रयत्न किया जाता है और जिसकी आवश्यकता नहीं है वह दिखाया जाता है ऐसी ही एक वास्तविक स्थिति का उदाहरण -

"कल जब घर को लौट रहा था देखा उलट गयी है बस
सोचा मेरा बच्चा इसमें आता रहा न हो वापस
टेलिविजन ने खबर सुनायी पैंतिस घायल एक मरा
खाली बस दिखला दी खाली दिखा नहीं कोई चेहरा
वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिए हिया
उसके लिए समाचारों के बाद समय ही नहीं दिया।"[30]

नयी कविता आज अपने युगीन संदर्भ में जीवन-दृष्टि, सौंदर्य बोध, क्षण बोध और लघु-मानव के जिस बोध को प्रस्तुत कर रही है वह आधुनिकता की ही स्थिति है। कुछ गहराई से देखे तो आधुनिकता से अधिक सामाजिक भाव बोध को वाणी दे रही है। यथार्थ की गतिशीलता और क्षणानुभूति की व्यंजना में नए कवियों ने जनभाषा का प्रयोग करके आधुनिक बोध का परिचय दिया है। नयी कविता में अपनी स्थिति के प्रति जागरूकता का भाव व्याप्त है। आज की दुनिया में व्यक्ति संघर्ष, दर्द, चोट को सहन करने के बाद भी बना रहता है। "लुभाना" इस कविता में कवि ने एक चालीस साल की औरत को स्थान दिया है। जो परिस्थिति के हाथ में मजबूर होकर वेश्या बन गयी है। वह वेश्या बनने के पीछे समाज का ही हाथ है। आज उस औरत को ऐसी आदत पड़ गयी है वह लोगों को सिर्फ लुभाना जानती है। उसकी उमर हँसने की न होने के बावजूद भी वह हँस रही है। आज के वर्तमान युग में इन्सान को क्या से क्या बनना पड़ता है यह प्रस्तुत करते हुए कवि कह उठता है -

"बड़ी किसी को लुभा रही थी
चालिस के उपर की औरत
घड़ी-घड़ी खिलखिला रही थी
चालिस के उपर की औरत
खडी अगर होती वह थक्कर
चालीस के उपर की औरत।"[31]

नये कवियों ने राजनीति को लेकर समाज की अवस्था दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। जो लोगों के बारे में तो कुछ सोचते नहीं। उनकी तकलीफों को दूर करने के बजाय सिर्फ राजधानी में बहस करते रहते हैं। इसके कारण न तो समाज का भला होता है न देश का किन्तु अपनी कुर्सी के सातिर सिर्फ राजनीतिक लोग बहस में ही अपना समय बेकार करते रहते हैं। ऐसी ही एक कविता "पैदल आदमी" में कवि रघुवीर सहाय ने राजनीति पर व्यंग्य करते हुए समाज के मनुष्यों के दुःख को प्रकट किया है।

"वे उधर से इधर आ करके मरते थे
या इधर से उधर जा करके मरते थे
यह बहस राजधानी में हम करते थे।"[32]

वास्तव में नई कविता का इस युगीन चेतना से असम्पृक्त या अछूता रह जाना असंभव सा था। अतः नए कवियों की कविता में आर्थिक शोषण और अन्य सामाजिक विसंगतियों के विरूद्ध स्पष्ट इजहार है। कवि ने सामाजिक विषमता को स्पष्ट रूप से दिखलाने का प्रयत्न किया है। भूख के कारण लोग मर गए थे परन्तु किसी को उसकी फिक्र नहीं है। हर एक अपने को बचाए रखने के बारे में सोचता रहता है। इस प्रवृत्ति पर रघुवीर सहायजी कह उठे हैं -

"हजार कई हजार हजारों मर गए भूख से
- ऐसा कहा

इतनी बडी संख्या बतायी कि उतनी बडी
आड हो गयी
कि कोई देख नहीं पाया कि मैं
उनमें नहीं था।"[33]

नयी काव्यधारा में आत्म-चेतन अथवा व्यक्ति-चेतन की जो अभिव्यक्ति हुई है वह समाज-मूल्यों से असम्बद्ध नहीं है। नयी कविता में नए संस्कारों को स्वीकार किया है जो सत्य है। नए कवियों ने परंपराओं के प्रति भी विद्रोह किया है।

नि ष्क र्ष

रघुवीर सहाय के काव्य में सामाजिक यथार्थ के प्रति जागरूकता तथा वैज्ञानिकता तरीके से समाज को समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती है और यही उनके काव्य विषयक दृष्टिकोन की विशेषताएँ है। मार्क्सवाद को उनके काव्य में स्थान नहीं है पर विचार-वस्तु कविता में खून की तरह दौडता है। रघुवीर सहाय के काव्य में सामान्य मानव की व्यथा एवं दयनीय स्थिति, शासन तंत्र की व्यवस्था के कारण नेताओं में बढ़ते भ्रष्टाचार का बोध सर्वत्र दृष्टिगत होता है। नव्य सांस्कृतिक चेतना के परिवेश में सभी मनुष्यों के भरण-पोषण तथा सुखपूर्ण जीवन व्यतित करने की कल्पना उन्होंने की है। लोकहितवादी चेतना की अच्छी अभिव्यक्ति को रघुवीर सहायजी ने पेश किया है। अतः रघुवीरजी ने असुंदर में सुंदर तथा अभद्रता से भद्रता ढूँढने के लिए जो प्रयत्न किया है, वह आधुनिक बोध का ही पहलु है। इस प्रकार सामाजिकता के विविध पहलुओं के दर्शन इसमें दिखाई पड़ते हैं।

संदर्भ-सूची

1· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, दि·सं·1976, पृ·22

2· वही, पृ·20

3· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·27

4· वही, पृ·22

5· वही, पृ·90

6· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, दि·सं·1976, पृ·3

7· सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र·सं·1960, पृ·107

8· वही, पृ·107

9· वही, पृ·87

10· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·19

11· सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र·सं·1960, पृ·140

12· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·89

13· वही, पृ·103

14· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, दि·सं·1976, पृ·5

15· वही, पृ·8

16· वही, पृ·10

17· वही, पृ·22

18· वही, पृ·12

19· वही, पृ·23

20· वही, पृ·40

21· वही, पृ·50

22· वही, पृ·51

23· वही, पृ·75

24· वही, पृ·65

25· वही, पृ·2

26· वही, पृ·76

27· वही, पृ·73

28· वही, पृ·66

29· वही, पृ·69

30· वही, पृ·47

31· वही, पृ·42

32· वही, पृ·33

33· वही, पृ·18